ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-4* Issue-12* January- 2020
Innovation The Research Concept

भारतीय साहित्य और उसका इतिहास

अशोक चौहान
सहायक प्राध्यापक राजनीति विज्ञान
शासकीय महाविद्यालय जुन्नारदेव
जिला–छिन्दवाड़ा (म.प्र.), भारत

सारांश

भारतीय साहित्य विश्व का सबसे प्राचीन साहित्य है। संसार का सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद माना जाता है। आदिकालीन साहित्य ने आदि भाषा का निर्माण और भविष्य की रचनाओं के लिए मार्ग निर्देश किया। रीतिकाल में साहित्यिक चेतना अन्य युगों से कही अधिक थी पर विषय का संकोच एवं कवि परम्परा इसकी न्यूनता रही। भारतीय साहित्य के आधुनिक काल में दृष्टिकोण शैली के साथ–साथ शिल्पगत नवीनता का भी समावेश हुआ। भारतीय साहित्य के इतिहास में पत्र–पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। प्रारम्भिक हिन्दी भाषा और साहित्य की प्रगति पत्रकारिता द्वारा ही हुई। भारतीय साहित्य का स्वतंत्रता संग्राम में विशेष योगदान रहा है। राष्ट्रीय चेतना के वाहक अनेक साहित्यकार हुये है।[1]

भारतीय साहित्य में धर्म, न्याय, नीति, पुरूषार्थ, कर्म, अर्थ आदि मानवीय पहलुओं पर मणिकांचन संयोग प्रस्तुत कर नयी वैचारिक शक्ति का अविर्भाव किया। जहां वैचारिक शक्ति बाधित हुई वहां भारतीय साहित्य प्रभावित हुआ, भारतीय साहित्य में हृदय तत्व को प्रधानता सर्वत्र परिलक्षित होती है।

प्रस्तावना

सर्वविदित है कि साहित्य में मानवीय संवेदना की केन्द्रीय उपस्थिति रही है। क्रोध और करूणा साहित्य की मुख्य सृजन शक्ति रहे हैं। अत्याचार, अनाचार के प्रति व्यक्ति के मन में क्रोध पैदा होना उसके मनुष्य होने का लक्षण माना गया है तो किसी पर होते अत्याचार दमन को देखकर करूणा विगलित होना मनुष्यता का धर्म। मिथुनरत क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक की व्याध द्वारा निष्ठुरता पूर्वक मारे जाने पर अगर वाल्मीकि के हृदय में अभर्ष न पैदा हुआ होता तो क्या –

''मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमागमः शाष्वताः समाः यत क्रौंच मिथुनः देष्मवघः कामंमोहितम्।''

रूप में भारतीय साहित्य का आदि श्लोक उनके कंठ से निःसृत हो पाता। पश्चिम हो या पूरब सभी जगह साहित्य में क्रोध, शोक, करूणा जैसे भावों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

''वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान, निकालकर आंखों से चुपचाप, वही होगी कविता अनजान।''

जैसी काव्योक्ति मा साहित्य के करूणा प्रधान इतिहास को ही हमारे सामने रखती है।[2]

भारतीय साहित्य में जहां भी मर्म को छूने वाले प्रसंग आए है उनमें करूणा का ही समावेश है हमारे भारतीय साहित्य में विरह विदग्ध पक्ष द्वारा प्रेमिका को संदेश देने के लिए मेघों को दूत बनाने का उदाहरण हो या अपनी पत्नी इंदुमति के मृत्यु शोक में राजा अज का विलाप हो या फिर उर्वशी के लिए पुरूरवा, सीता के लिए राम का बिलखना हो, सबके पीछे करूणा भाव की ही निर्णायक भूमिका रही है। जायसी का पदमावत् करूण रस से ओत–प्रोत हैं पूरे कृष्ण अस्ति काव्य में कृष्ण के वियोग में गोपियों का मर्मस्पर्शी अश्रु प्रवाह करूणा में ही परिचालित है।[3]

भारतीय साहित्य में कबीर, सूर, तुलसीदास, मीरा, नामदेव आदि जितने भी साहित्यकार है सबने राजसत्ता और अर्थ वैभव के सामने अत्मसमर्पण कने से इंकार कर दिया। यही कारण है कि आज भी उनकी रचनाओं में मनुष्यता का प्रकाश जगमग करता नजर आता है। भारतीय साहित्य में अनेक साहित्यकार हुए है, जो राजसत्ता और अर्थसत्ता के समस्त दबावों को दर किनार करते हुए मनुष्यता के उत्कर्ष के लिए अपनी साहित्य साधना की मशाल जलाते रहे, हांलाकि बहुतों को इसकी कीमत अपनी जान देकर चुकानी पड़ी है।

भारतीय साहित्य में पूंजीवाद का अत्यंत निकृष्ट, विकृत स्वर गुंजित हुआ है। इस स्वर को प्रेमचंद ने बहुत पहले पहचान लिया था जो उनके लेख महाजनी सभ्यता में व्यक्त हुआ है भारतीय साहित्य ने अमानवीय स्थितियों के विरूद्ध मुखर होकर ही अपनी उपयोगिता, अस्मिता बनाए रखी है।[4] निःसंदेह भारतीय साहित्य तमाम प्रलोभनों, दबावों से विचलित न होने वाले साहित्यकारों की बदौलत ही साहित्य मनुष्यता को बचाने–संवारने का अपना धर्म निभा सका है और इसी से भारतीय साहित्य का भविष्य सुरक्षित एवं संरक्षित रहा है। सामाजिक विकास के क्रम में साहित्य के लिए चुनौतियां पैदा होते रही है। यह चुनौती साहित्य को मात्र दर्पण या मात्र अधिरचना का अंग समझने का नतीजा रहा है। वास्तव में साहित्य की सदैव सक्रिय भूमिका रही है। भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी भूमिका मनुष्य को मनुष्य बनाने की रही है। अपनी इसी चिर–परिचित भूमिका में ही भारतीय साहित्य अनेक चुनौतियों के समक्ष अपनी उपयोगिता और प्रासंगिकता को बनाये रखा है।[5]

भारतीय साहित्य ने सदैव संवाद स्थापित करने का भरसक प्रयास किया। संवेदन हीनता के रेगिस्थान को पैदा होने से रोका है प्रवाह में बह जाने या जैसी हवा चले वैसा रूख कर देने की शिक्षा भारतीय साहित्य कभी नही देता। भारतीय साहित्य का महत्व रहा है गलत प्रवाह के विरूद्ध एक सशक्त हस्तक्षेप करने वाली सत्ता के रूप में, एक दिषा निर्देशक और भविष्य दृष्टा के रूप में।

ध्यान रहे हर युग में साहित्यकारों को अपने रंग में रंगने के लिए राजसत्ता और अर्थसत्ता ने बाध्य किया लुभाया लेकिन जो उससे दामन बचाकर मनुष्यता के उत्कर्ष को ही अपनी साहित्य साधना का लक्ष्य समझते रहे, उन्हीं के साहित्य को दुनिया जानती है और वे ही मनुष्यता के इतिहास में आज अमर है।

संदर्भ सूची

1. ग्रियर्सन, सर जार्ज (1989), मार्डन वरनाक्यूलर लिट्रेचर ऑफ हिन्दुस्तान, साहित्य भवन प्रा.लिमिटेड, इलाहबाद, पृष्ठ18–43।
2. द्विवेदी, डॉ. हजारी प्रसाद, (1940), हिन्दी साहित्य की भूमिका, रामप्रसाद एण्ड सन्स, भोपाल, पृष्ठ 136।
3. सिंह, डॉ. त्रिभुवन, (1968), साहित्य एक परिचय, कैलाष पुस्तक सदन, भोपाल, पृष्ठ 68।
4. शुक्ल, पंडित रामबटोही एवं मिश्र, भागीरथ (1956), हिन्दी साहित्य का उद्भव विकास, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 93–107।
5. हरिषचन्द्र, भारतेन्दु, (1868), कविवचन सुधा मुख पृष्ठ, कमल प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 03।
6. मूल हेनरी एवं कोक आर्थर (1886), प्रसिद्ध कोष हाब्सन–जाब्सन, अवन्तिका प्रकाशन, रामघाट, अलिगढ़, पृष्ठ 488।
7. मिश्र, डॉ. विष्वनाथ प्रसाद (1960), हिन्दी साहित्य का अतीत, संजय साहित्य भवन, आगरा, पृष्ठ 109।
8. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, (1990), हिन्दी साहित्य का इतिहास, कमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 87।